

An International Registered and Peer Reviewed Research Journal

SATRAACHEE

ISSN 2348-8425

सत्राची

वर्ष 9, अंक 30, जनवरी-मार्च, 2021

प्रधान संपादक
डॉ. कमलेश वर्मा

संपादक
ज्ञानन्द बिहारी

सत्राची

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान की पूर्व समीक्षित त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 9, अंक 30, जनवरी-मार्च, 2021

संरक्षक

चंद्रावती सिंह
तेलानी मीना होरो
दिलीप राम

प्रधान संपादक

कमलेश वर्मा

संपादक

आनन्द बिहारी

समीक्षा संपादक

सुचिता वर्मा, आशुतोष पार्थेश्वर

सह-संपादक

जयप्रकाश सिंह

संपादन सहयोग

हृदन आरा, भावना मिश्रा

सलाहकार समिति व समीक्षा मंडल

मुक्तेश्वर नाथ तिवारी, राजू रंजन प्रसाद, अंजय कुमार, सुचिता वर्मा,
आशुतोष पार्थेश्वर, तेलानी मीना होरो, दिलीप राम, पुष्पलता कुमारी,
अरविन्द कुमार, नीरा चौधुरी, दिनेश बल्लभ।



SATRAACHEE

Peer Reviewed and Refereed Research Journal

मूल्य : एक प्रति 150 रुपए

सदस्यता शुल्क :

पंचवार्षिक	: 3000 रुपए (व्यक्तिगत)
	: 8000 रुपए (संस्थागत)
आजीवन	: 10,000 रुपए (व्यक्तिगत)
	: 20,000 रुपए (संस्थागत)

बैंक द्वारा सदस्यता शुल्क भेजने के लिए खाते का विवरण निम्नवत है :

ANAND BIHARI, A/C No.: 38557011778
IFSC : SBIN0006551, Boring Canal Rd.-Rajapool, East
Boring Canal Road, Patna, Bihar, Pin: 800001

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादन/प्रकाशन : अद्वैतनिक/अव्यावसायिक

प्रकाशक : सत्राची फाउंडेशन, पटना

संपादकीय संपर्क :

आनन्द बिहारी

केशव कुंज, निचला तल्ला

बॉलिया चौक, सलिमपुर अहरा,

कदमकुआँ, पटना, बिहार, पिन : 800003

website : <http://satraachee.org.in>

E-mail : satraachee@gmail.com

: editor.satraachee@gmail.com

Mob. : 9661792414, 9470738162



SATRAACHEE

इस अंक में...

संपादकीय

05 :: शोध और उदार समाज की चाहत रखती पत्रिका

कमलेश वर्मा

संबोधन

07 :: उपनिवेशवाद और साहित्य

ओमप्रकाश सिंह

आलेख

17 :: प्रकृति, मनुष्य और मशीन का त्रिकोणीय यथार्थ

शशि शर्मा

22 :: अमरकांत की कहानियों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक चेतना

विजया प्रियदर्शिनी

27 :: 'पूस की रात' : हल्कू आज भी बदहाल है।

सीताराम गुप्ता

पाठालोचन

31 :: 'रानी सारंधा' कहानी का उर्दू-हिंदी पाठ

आशुतोष पार्थेश्वर

शोधालेख

41 :: काशी की तवायफ परंपरा और 'सेवासदन'

संगीता मौर्य

56 :: हिंदी कहानियों में वृद्ध जीवन की व्यथा

सोनी साव

63 :: मिजो कहानी का परिदृश्य और उसकी सामाजिकता

रोबी लललामकिमी

अमिष वर्मा

70 :: असम का लोकसाहित्य

निरुत्पल बोरा

76 :: मानवतावाद के पक्षधर कवि : कुँवर नारायण

ऋषि कुमार

81 :: धूमिल की सामाजिक चेतना

ब्रजबिहारी पांडेय

इतिहास दृष्टि

86 :: राममनोहर लोहिया का इतिहास दर्शन : एक पुनरावलोकन

अजीत प्रताप सिंह

साक्षात्कार

89 :: आदमी को हराया नहीं जा सकता, बर्बाद किया जा सकता है

जगमोहन सिंह

BookReview

96 :: *The Book Thief*

Kankshi Kamal Verma

Research Paper

99 :: *Human Rights and its Development : An Overview*

Husna Ara

105 :: *Ubaidullah Sindhi and making of Nationalism*

Shahid Perwez



काशी की तवायफ परंपरा और 'सेवासदन'

○ संगीता मौर्य

प्राचीन परंपरा और शब्दकोशों में तवायफों को गणिका, नगर वधू, वेश्या, पतुरिया, तवायफ, रंडी-मुंडी आदि नामों से अभिहित किया जाता है। गीता श्री 'वेश्या' शब्द को 'वैश्य' से उत्पन्न मानती हुई कहती हैं- "कुछ विद्वान 'वेश्या' शब्द को 'वैश्य' शब्द के कारण ही उत्पन्न हुआ मानते हैं। देह का यह व्यवसाय जिसे हम वेश्यावृत्ति कहते हैं, संभवतः व्यापारिक विकास से आया। ऐसा नहीं है कि यह पेशा सिर्फ व्यापार के कारण ही अस्तित्व में आया। हाँ, यह जरूर कहा जा सकता है कि इसके कारण यह फला-फूला होगा।" महाकवि मतिराम ने गणिका के स्वरूप को बताते हुए लिखा है-

धन दे जाके संग मैं, रमै पुरुष सब कोई।

ग्रंथन को मति देखिके, गणिका जानहु सोइ॥

भारतीय परम्परा में गणिकाओं का इतिहास लगभग ढाई से तीन हजार साल पुराना है। बौद्ध काल की प्रसिद्ध गणिका आम्रपाली की कथा से हम सभी परिचित हैं। बौद्ध बिहारों में स्त्रियों के प्रतिबंध के बाद भी आम्रपाली की प्रतिभा देखकर बुद्ध ने इन्हें अपने विहार में प्रवेश दिया था। 'ये कोठेवालियाँ' में अमृतलाल नागर लिखते हैं- "वेश्या या गणिका का अर्थ स्पष्ट है। जन और गण की पत्नी केवल इस देश के प्राचीन इतिहास से ही नहीं वरन सारी दुनिया में मानव-सभ्यता के पितृसत्तात्मक युग में एक आवश्यक और महत्वपूर्ण संस्था बन गयी। बाइबिल में केडेशोध वेश्याओं का वर्णन आता है। ये लोग मंदिरों से सम्बद्ध थीं; मोआबाइट और असीरियन मंदिरों में भी इनका बड़ा आदर होता। आर्मीनिया देश में पुराने समय में यह आम प्रथा थी कि लोग अपनी बेटियों को देवदासी बना देते थे। प्राचीन बेबिलोनियाँ में इन देवदासियों का रुतबा था। प्राचीन एथेंस और रोम में भी वेश्याओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।.. हमारे देश में सालवती, मथुरा की वसंत सेना तथा वैशाली की नगरवधू अम्बपाली के वृत्तान्त अब तक भारतीय साहित्य में अनेक काव्य, नाटक और कहानी-उपन्यासों की विषय-वस्तु बनकर लोक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं।" अतः स्पष्ट है कि गणिकाओं का इतिहास बहुत पुराना और समृद्ध रहा है।

समाज में तवायफों को लेकर पक्ष-विपक्ष की बहुत सी राय मौजूद है। इसे कुछ लोग समाज के कलंक या अभिशाप के रूप में भी चिह्नित करते हैं तो कुछ लोग इसे नृत्य-संगीत आदि कलाओं के विकास लिए इसे वरदान के रूप में देखते हैं। इस सन्दर्भ में उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ का कहना था कि अगर कोठे नहीं होते, तवायफें नहीं होतीं तो आज बिस्मिल्लाह बिस्मिल्लाह नहीं होता। मुजफ्फरपुर की तवायफ बृजबाला के साथ बिस्मिल्ला खाँ रियाज करते थे बिस्मिल्लाह खाँ यह मानते भी थे कि पक्की

गायकी कोठे पर थी। यह गाना 'दिल का खिलौना हाय टूट गया' इस गाने की धुन बृजबाला ने ही बनाई थी। इस गाने ने बिस्मिल्लाह खां को अमर कर दिया और बृजबाला गुमनाम ही रहीं। हिंदी नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चंद्र की प्रेमिका इसी कोठे की एक बंगाली तवायफ थीं जो बहुत पढ़ी-लिखी और साहित्य में रुचि रखने वाली थीं उनकी बहुत सी रचनाएँ भारतेन्दु की मान ली गयीं और मल्लिका का अस्तित्व इतिहास के गर्त में दफन हो गया। मैं धन्यवाद देना चाहूँगी डॉ. राजकुमार को जिनके अथक परिश्रम से मल्लिका की रचनाओं का समग्र प्रकाश में आया।

'टुमरी' और 'दादरा' की खूबसूरती भी इन्हीं कोठों की देन है। 'टुमरी' की एक बानगी कि 'हमसे करके हो बहाना सैयां कहवाँ गईला ना' तो वही 'दादरा' में देखें तो 'भीगे पसीनवा से अँगिया, बलम तनि बनिया डोला दा ना'। बनारस के इस गायिकी की परम्परा को समृद्ध करने वाली हुस्नाबाई, धनेसरा बाई, रसूलन बाई, सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी, जदन बाई जो फिल्म अभिनेत्री नरगिस की माँ थीं और छप्पन छुरी के नाम से मशहूर जानकी बाई के साथ ही विद्याधरी बाई, मोतीबाई, गौहर जान, काशी बाई आदि इस परम्परा के चमकते नक्षत्र रही हैं। इस सन्दर्भ में अमृत लाल नागर लिखते हैं कि - "उत्तर भारत में तीन नाम किंवदन्तियों की ऊँची-ऊँची मीनारों पर प्रतिष्ठित है; नर्तकों में महाराज बिंदादीन तथा गायिकाओं में गौहरजान और विद्याधरी के नाम नृत्य-संगीत के प्रेमियों में बड़े ही प्रख्यात हैं।"³ हुस्ना बाई का भी बड़ा नाम था उनकी लिखावट बहुत सुंदर थी। उनका पत्र-व्यवहार भारतेन्दु से भी होता था। तब के जमाने में ये तवायफें हमारी शान हुआ करती थीं। जिनको राष्ट्रपदक से सम्मानित भी किया जाता था। 'ये कोठे वालियाँ' में अमृतलाल नागर हमारा ध्यान इस ओर ले गए हैं। वह बताते हैं कि- "विद्याधरी की समवर्ती गायिका अंजनीबाई मालवेकर राष्ट्रपति द्वारा सम्मान प्राप्त कर चुकी हैं। उनके बाद की पीढ़ी की बनारस की रसूलन बाई को भी सम्मान प्राप्त हो चुका है। काशी से दूर रहने के कारण विद्याधरी का नाम लोगों की स्मृति से भी ओझल हो गया है। सुप्रसिद्ध लेखक बंधुवर रुद्र काशिकेय ने मुझे बतलाया था कि विद्याधरी से जयदेव के गीत-गोविन्द की रचनाएँ जिसने सुनी हैं वह उन्हें कभी भूल नहीं सकता। विद्याधरी और राजेश्वरी ने गोस्वामी दामोदर लाल जी से 'कामसूत्र' पढ़ा था। काशी की एक सुप्रसिद्ध टुमरी-गायिका बड़ी मोती बाई का नाम आने पर बोलीं, "पुरानों में विद्याधरी, आहा !" काशी में मैंने अनेक से विद्याधरी के संबंध में सुना। विद्याधरी ने अपने समय में सम्पूर्ण उत्तराखण्ड को अपनी गायन कला से प्रभावित कर रस बरसाया था।"⁴

पहले बड़े-बड़े रईसों की शादियों में महफिलें सजती थीं। ये महफिलें छोटी-छोटी नहीं होती थीं बल्कि कई-कई डेरे की बड़ी महफिल सजती थीं। महफिल में उठने-बैठने सबके सलीके हुआ करते थे। कहाँ चप्पल उतारनी है, कैसे बैठना है, कब क्या बोलना है आदि सभी छोटे-बड़े कायदे जानने पड़ते थे। देखा जाय तो इन महफिलों में बाद में मणिपुरी, भरतनाट्यम जैसे सभी शास्त्रीय संगीत देखने को मिलने लगे लेकिन उत्तर-प्रदेश का लोक नृत्य 'कत्थक' जो इन महफिलों की शान हुआ करती थी या हम यह भी कह सकते हैं कि 'कत्थक' जैसे लोक नृत्य की परम्परा को ये तवायफें ही थाती के रूप में संभाली और समृद्ध की हुई थीं। इस पर प्रकाश डालते हुए वसुधा डालमिया लिखती हैं- "जहाँ बहुत दिनों से तवायफें नागरिक जीवन के केंद्र में रहती चली आती थीं। सभ्य समाज सिर्फ आनंद के लिए ही नहीं वरन कला, संगीत नृत्य का लुप्त लेने के साथ-साथ ऐसे आभिजात्य माहौल की खोज में इन तवायफों के पास आता था, जो सौन्दर्य बोधिय दृष्टि से परिष्कृत हो। जो भी तवायफ एक बार सौंदर्य और कला में महारत हासिल कर लेती, उसे हमेशा के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती। बनारस

के महाराज और सत्ताधीशों के सामने उसे अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए कहा जाता, साथ ही सभी प्रमुख मंदिरों और पवित्र नदी गंगा की रेत पर होने वाले धार्मिक अनुष्ठानों में आमंत्रित की जाती।”⁵ देखा जाय तो प्रेमचंद के उपन्यास ‘सेवासदन’ की भोली बाई इसी परम्परा की है और उसकी अनुगामिनी बनी सुमन भी इसी बनारस की है।

प्रारंभ के दौर में देखा जाय तो तब यहाँ की तवायफों बदनाम नहीं थीं। आज तवायफों का जो रूप हम देख रहे हैं वह 19वीं सदी के बाद का है। ध्यान देने वाली बात यह है कि बनारस में तवायफों की इस परम्परा की शुरुआत कब से मानी जाय? अपने उपन्यास ‘सेवासदन’ में प्रेमचंद बार-बार यह कहते हैं कि मुस्लिम शासन के बाद तवायफों की यह परम्परा शुरू होती है। इस संबंध में हम कह सकते हैं कि इसका सही समय औपनिवेशिक भारत का है। पहले तवायफों के यहाँ लोग तालीम लेने जाते थे। यहाँ सुर, संगीत और तहजीब में रुचि रखने वाले लोग आते थे। छोटे-बड़े सभी का इन महफिलों में आदर और सम्मान था। बनारस की संगीत परम्परा से हम सभी वाकिफ हैं और इस परंपरा का स्रोत दालमंडी ही है। जहाँ न कभी दाल की मंडी थी न ही वेश्याओं की मंडी लगती थी बल्कि यहाँ से संगीत की वह परंपरा विकसित होती है जिसने दुनिया में बड़ा नाम कमाया है।

चौक से नई सड़क के बीच की जिस गली का नाम दालमंडी है; दरअसल, बनारस के इस गली का नाम यहाँ के ही राज वैद्य ‘हकीम मोहम्मद जाफर के नाम पर पड़ा। दालमंडी की उसी गली में जहाँ बाद के दिनों में लोग वहाँ जाने से कतराने लगे उस गली की शोभा पारसी थियेटरकार आगा हश्र काश्मीरी और बिल्मल्लाह खां साहब का निवास भी वहीं था तो फारसी-उर्दू के मशहूर फनकार मिर्जा गालिब और उर्दू के पहले सॉनेट शायर डॉ. नाजिम जाफरी भी वहीं से संबंध रखते थे।

यह बात इतिहास सम्मत है कि मुगलों के समय में संगीत की परम्परा बहुत समृद्ध थी। मुगल बादशाहों ने संगीत और संगीतकारों का बहुत आदर किया था। लेकिन इस समृद्ध परंपरा में संध लगाने का काम भारत में ब्रिटिश उपनिवेश के दिनों में अंग्रेजों ने किया। चूँकि उन्हें न यहाँ के संगीत से मतलब था न यहाँ की परम्परा और संस्कृति से ही यही कारण है कि उन्होंने सारी नाचने वाली को ‘नाच गर्ल’ का नाम दिया। इस संबंध में गरिमा श्रीवास्तव लिखती हैं कि- “1856 में, अवध में तवायफों को मिलने वाली पेंशन दी गई थी। 1857 में तो वे संदेह के घेरे में आ गई थीं, लेकिन 1864 से तो वे अति साधारण देह-श्रमिकों में तब्दील हो गईं। वे स्त्रियाँ जो साहित्य-संस्कृति, कला की वाहिकाएँ बनकर पुराने समय से ही शासन, सत्ता और संस्कृति में सम्मानित हुआ करती थीं, बदले समय में अपनी कलाओं के साथ भरण-पोषण के लिए बाजारों में बैठने लगीं। ब्रिटिश कानूनों ने बेहद दीनावस्था में पहुँचा दिया अब वे ‘सिंगिंग एंड डांसिंग गर्ल्स’ बनकर सिविक टैक्स खातों में कर अदाकर्ता थीं।”⁶ अंग्रेज विद्वान प्राण नेविल और फ्रेंचेस्का ऑरसीनी ने इस पर विस्तार से बात की है।

कोठे पर इस गायिकी का रियाज बहुत वर्षों तक किया जाता था तब जाकर गायिकी पक्की होती थी, लेकिन बाद के दिनों में गजल का जमाना आया और कोठे की पक्की गायिकी थियेटर और मजेदार बातों में तब्दील हो गयी। इस संबंध में ‘सेवासदन’ की भोली सुमन से कहती है कि- “तुम्हें छः महीने में आ जाएगा; यहाँ गाने को कौन पूछता है, ध्रुपद और तिल्लाने की जरूरत ही नहीं। बस, चली हुई गजलों की धूम है। दो-चार टुमरियाँ और कुछ थियेटर के गाने आ जाएँ और बस, फिर तुम्हीं तुम हो। यहाँ तो अच्छी सूरत और मजेदार बातें चाहिए।”⁷

इस तरह 16वीं सदी में महफिलों की शुरुआत हुई मानी जा सकती है। गीता श्री भी लिखती हैं कि “मुगलकालीन शासकों के समय में ही यहाँ वेश्यावृत्ति का धंधा शुरू हुआ।”⁸ तभी तवायफों राजमहलों से निकलकर कोठे पर आ जाती हैं। 16 अगस्त, 1781 का दिन था, ईस्ट इंडिया कंपनी के अंग्रेज अफसर वारेन हेस्टिंग काशी नरेश महाराजा चेतसिंह को उनके शिवाला में बंदी बना दिया था। भले ही बनारसियों ने उसे खदेड़ कर भगा दिया लेकिन राजा का सब कुछ तबाह हो गया। बनारस में आज भी राजा चेतसिंह के नाम पर चेतगंज है जहाँ के वे राजा थे। अंग्रेजों के आने के बाद यहाँ की राजशाही टूटी और आर्थिक ढाँचा लड़खड़ा गया। राजाओं में आपसी फूट पैदा होने के कारण राजा भी कमजोर हुए और उनकी आर्थिक स्थिति भी कमजोर होती चली गयी। अब वे तवायफों का संरक्षण कर पाने की स्थिति में नहीं रहे। इस कारण तवायफों की जिंदगी में भी बहुत भारी बदलाव आया और उनको अपना अलग रास्ता अख्तियार करना पड़ा। गीता श्री लिखती हैं—“दुनिया की नजर में वे चाहे जो हो, बुरी, अछूत, गंदी, लेकिन मेरी नजर में वे दैहिक श्रमिक हैं। उनके सामने जब दुनिया ने जब कोई रास्ता नहीं छोड़ा और सड़क व कोठे पर ला खड़ा किया तो वे क्या करतीं।”⁹

आजादी की लड़ाई में पुरुषों की भूमिका को तो सभी जानते हैं इसके साथ स्त्रियों ने भी इसमें बराबर का सहयोग किया है। यह बात भी कुछ लोग ही जानते हैं लेकिन हम में से बहुत ही कम लोग यह जानते होंगे कि बनारस की तवायफों ने देश की आजादी में अपना योग दिया था। इसका जिक्र इतिहासकारों, ऐतिहासिक रिपोर्ट के साथ ही इस तरह के शोध पत्रों में कहीं-कहीं मिल जाता है लेकिन इसको पाठ्यक्रम का हिस्सा कभी नहीं बनने दिया गया। ‘वी एन एस टुडे’ में छपी एक खबर के अनुसार—“इतिहास के जानकारों की मानें तो बनारस के दालमंडी में सजने वाली महफिलों में अंग्रेजों को देश से निकालने की रणनीति तय होती थी। मशहूर अभिनेत्री नर्गिस की माँ और संजय दत्त की नानी जह्न बाई ने कोठे पर आए दिन अंग्रेजों के छापे से तंग आकर दालमंडी गली छोड़ दी थी। तुमरी गायिका राजेश्वरी बाई तो हर महफिल में अंतिम बंदिश ‘भारत कभी न बन सकेला गुलाम...’, गाना नहीं भूलती रहीं। ‘फुलगेंदवा न मारो, मैका लगत जोबनवा में...’, जैसे गीत से मशहूर रसूलन बाई ने तो आभूषण तभी पहने जब देश आजाद हो गया। इहे ठहियाँ झुलनी हेरानी हो रामा... कासे मैं पुछू... गीतों को अपने सुरीली आवाज में पिरोने वाली मशहूर तवायफ दुलारी बाई आजादी के समय बनारस के क्रांतिकारियों में जोश भरने का काम करती थी।”¹⁰ इस आवाज में इतनी जोश और क्रांति थी कि वारेन हिस्टिंग्स महिला का रूप धारण करके यहाँ से भाग खड़ा हुआ और इनके हुंकार से ही दुलारी बाई के सबसे खास नन्हाकू ने भी कई अंग्रेजों के सिर धड़ से अलग कर दिए थे। कजरी गायिका सुंदरी के प्रेमी बनारस के दाताराम नागर को ब्रितानी सेना से मोर्चा लेने पर कालापानी की सजा हो गई। सुंदरी अपना दुःख इस कजरी के माध्यम से प्रकट करती हुई कहती है—

अरे रामा, नागर नैया जाला कालेपनियाँ रे हरी!
सबकर नैया जाला कासी हो बसेसर रामा,
नागर नैया जाला कालेपनियाँ रे हरी !”¹¹

आगे वह अपनी विरह वेदना प्रकट करती हुई कहती है—

रहिया में रोवैं तोर संगी आउर साथी रामा,
नारघाट पर रोवैं कसबिनियाँ रे हरी !”¹²

इसका वर्णन शिवप्रसाद मिश्र 'रूद्र' ने बहती गंगा में किया है- 'स्वर जीवनी' सिद्धेश्वरी देवी भी अपनी महफिलों में देश भक्ति के गीत गाती रहीं। तो वहीं बनारस में महात्मा गाँधी की प्रेरणा से 'तवाएफ सभा' की स्थापना होती है और हुस्ना बाई उसकी अध्यक्ष नियुक्त होती हैं। नागर जी अपनी पुस्तक 'ये कोठेवालिंयों' में विद्याधरी देवी महात्मा गाँधी के साथ मीटिंग में हुई बात को प्रस्तुत करते हैं और विद्याधरी बाई के देश भक्ति संबंधी गीत को भी उद्धृत करते हैं-

*भारत न रह सकेगा हरगिज गुलाम खाना, आजाद होगा होगा आया है वो जमाना।
खूँ खौलने लगा है अब हिन्दुस्तानियों का, कर देंगे जालिमों के बंद बस जुर्म ढाना।
कौमी तिरंगे झंडे पर जाँ निसार उनकी, हिन्दू, मसीह, मुस्लिम गाते हैं ये तराना।
परवाह अब किसे है इस जेल वो दमन की, एक खेल हो रहा है फाँसी पे झूल जाना।
भारत वतन हमारा भारत के हम हैं बच्चे, माता के वास्ते है मंजूर सर कटाना।।¹³*

बनारस की तवायफों ने न सिर्फ संगीत की महफिलों को सजाया बल्कि अंग्रेज सैनिकों के विद्रोह में सड़कों पर भी उतरीं। घूँघट की आड़ में उनमें से कई खबरियों का काम करती थीं तो कई धनराशि द्वारा इस आंदोलन में अपना सहयोग भी देती थी।

कोरोना काल की वह घटना हम सब को याद ही है जब एक महिला मुस्लिम पत्रकार ने मडुवाडीह की उन वेश्याओं की स्थिति की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया कि किस प्रकार कोरोना काल में धंधा न हो पाने के कारण यहाँ की तवायफें भीख माँगने को मजबूर हैं। बाकायदे घर की दहलीज पर कटोरा लिए हुए उनकी फोटो भी सोशल मीडिया पर तैर रही थी। वास्तव में देखा जाय तो हमारा ध्यान कभी इस ओर गया ही नहीं की वेश्याएँ कैसे रहती होंगी? उनको खाने-पीने की भी कमी हो सकती है? वह समाज से अपनी व्यथा किस प्रकार से कह सकती हैं ? यदि कहती भी हैं तो समाज की क्या प्रतिक्रिया होगी ? इस तरह की कितनी सारी बातें जेहन में घूमने लगीं ! इस समाचार ने सचमुच में हमें अपनी ओर आकर्षित किया। इसके बाद मुझे बार-बार नलिनी जमीला याद आने लगीं जिन्होंने अपनी आत्मकथा 'एक सेक्स वर्कर की आत्मकथा' जो की किसी सेक्स वर्कर के द्वारा लिखी हुई पहली आत्मकथा है। इसमें नलिनी अपने बीमारी के दिनों को याद करती हुई लिखती हैं कि वह किस प्रकार बीमारी की वजह से धंधा नहीं कर पाती थीं और कोई दूसरा ठिकाना न होने के कारण वे मस्जिद में रहतीं और भीख माँगती थीं। कोई भीख तक नहीं देता था। सब मर्दों की गिद्ध दृष्टि उनकी बेटी की ओर ही लगी हुई थी।

बनारस के मडुवाडीह की इस खबर के बाद हमारा ध्यान बरबस बनारस की इन मंडियों की ओर जाता है। अगर हम गौर करें तो पाएंगे कि एक समय में बनारस की दालमंडी और शिवदासपुर जो की मडुवाडीह का थाना है इसे तवायफों के अड्डे के रूप में भी जाना जाता रहा है। मैं उस घटना को आज भी नहीं भूली हूँ जब मैं और मेरी बहन ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पहले-पहल दाखिला लिया था। हम गाँव से निकलकर पहली बार बनारस जैसे शहर में आये थे, कुछ नहीं जानते थे, न इस शहर के बारे में न ही इसके रहन-सहन के बारे में ही। हमने सुना था कि गोदौलिया में कपड़े सस्ते मिलते हैं, सस्ते कपड़े की चाह में हम गोदौलिया के लिए निकल पड़े। हमें जाना था गोदौलिया लेकिन रास्ता न जानने की वजह से हम चले गए नई सड़क और वहाँ से 'दालमंडी'। यह बाजार हमारे लिए कुछ नया और अजीब लग रहा था। एक में एक गली और एक में एक दुकानें इस तरह की बहुतायत में कभी भी इतनी हिन्दू और मुस्लिम की एक में एक गुथी हुई एक साथ दुकानें नहीं देखे थे। हमें यह एक नयी

और अलग सी दुनिया लग रही थी। फिर भी हम कुछ कपड़े खरीदे और बहुत खुशी-खुशी अपने छात्रावास की ओर चल पड़े। यहाँ अपनी सहपाठिनी जो अभी तक सहेलियाँ नहीं बनी थीं सबको सामान दिखाने लगे और उस जगह के बारे में भी बताया। उस समय उन लोगों ने जो दालमंडी के बारे में बताया उस रात मारे डर के नींद नहीं आई, हम बहुत ज्यादा डर गए थे। सबने अपनी जानकारी के अनुसार एक और बात जोड़ी कि एक बार बी.एच.यू. के विधि संकाय के छात्रों ने बहुत सी कोठे पर काम करने वाली लड़कियों को छुड़ाया था। इसकी जानकारी और अधिक पुख्ता हुई सत्य व्यास के 'बनारस टॉकीज' को पढ़ते हुए। जब वे शिवदासपुर वाली जगह का वर्णन करते हुए लिखते हैं- "अभी वह गंजा हम तक पहुँचाता; इससे पहले NGO के वोलंटियर ने रेड का सिग्नल दे दिया। छात्रावास के लड़कों की टुकड़ी लड़कियों को बचाने में लग गई। दादा ने उस लड़की को बस में खींच लिया। लड़की डर गयी थी, रो रही थी। बाकी लड़कियाँ भी इस स्थिति के लिए तैयार नहीं थीं। कुछ तो हाथ छुड़ाकर अँधेरी कोठरियों में गुम हो गईं। कुछ ने झट दरवाजों की कुंडियाँ लगा दीं। कुछ को वालंटियर्स, जबरदस्ती गाड़ी में डालने में सफल हो गए। अगर किसी तीसरे की नजर से देखा जाय तो यह बचाव कम हमला ज्यादा लग रहा था। मंडी में सब अपनी-अपनी जान बचा के भाग रहे थे।"^{14, 15}

यदि हम दालमंडी की भौगोलिक स्थिति पर विचार करें तो पाते हैं कि यह बनारस शहर के बीचो-बीच स्थित है। इसके एक सिरे पर गौतम बुद्ध के उपदेश का स्थल सारनाथ है तो दूसरे सिरे पर ज्ञान वाहिनी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय। सबसे आश्चर्य की बात यह कि गोदौलिया के जिस स्थान पर काशी विश्वनाथ का मंदिर है उसी के समीप या उसके गर्भ गृह में भी कह सकते हैं वही 'दालमंडी' स्थित है, जहाँ स्त्रियों के रूप का बाजार लगता है। कहा जाय तो आश्चर्य नहीं भी होना चाहिए क्योंकि मंदिरों में देवदासियों की परंपरा बहुत पुरानी है। गीता श्री लिखती हैं- "मंदिर, मस्जिद और गिरिजाघर से खुलने वाली धर्म की खिड़कियाँ सदियों से नारी देह को एक माध्यम मानती रही हैं। नारी देह यानी एक रास्ता जो स्वर्ग की ओर ले जाता है और इसी धर्म की आड़ में या सोहबत में होते रहे हैं देह के सौदे। शायद ये धर्म का असर है या सदियों से मन में बैठा डर, जिसका सौदा होता रहा, वह भी चुप और सौदा करने वाले भी खामोश।"¹⁶

तवायफों की परंपरा पर बात चली है तो अगर इस कड़ी में उमराव जान का नाम न लिया जाय तो यह बात पूरी नहीं हो सकती। उमराव जान लखनऊ की एक मशहूर तवायफ थीं। जिनका शायरी की दुनिया में बड़ा नाम था। उमराव जान की जिंदगी एवं उनके संघर्ष को उद्घाटित करने के लिए अभिनेत्री रेखा ने बेहतरीन अभिनय किया बाद में ऐश्वर्या ने भी। मिर्जा हादी रुसवा ने उमराव जान की आप-बीती का पूरा विवरण 'उमराव जान 'अदा' नाम से पंक्तिबद्ध किया है। यह पुस्तक 1899 ई. में आयी। यह कहानी फैजाबाद की अपहृत छोटी अमीरन से लखनऊ की उमराव जान तक की है। सन 1857 में जब अंग्रेजों ने लखनऊ में तबाही मचा दी थी, सब तरफ लूट-पाट, और सरे आम कत्ल का दौर चल रहा था। उस समय लखनऊ भी उजड़ गया था यही से राजे-रजवाणों की हुकुमत भी जाती रही थी ऐसे समय में ही महफिल और मुजरे का दौर भी चला गया। लखनऊ के नूर के साथ ही उमराव की जिंदगी के नूर भी बेनूर हो गए। अपनी जिंदगी के अंतिम दिनों में अपने तन्हा जीवन का सफर तय करते हुए उमराव जान वाराणसी में आ गईं। यह उसी दालमंडी में एक कमरा लेकर रहने लगीं जहाँ से इस दालमंडी की गौरवशाली परंपरा की शुरुआत होती है।

अध्ययन की दृष्टि से जब हमारा ध्यान बनारस की वेश्याओं की ओर जाता है तब मुंशी प्रेमचंद के

‘सेवासदन’ की याद जेहन में जरूर आती है क्योंकि बनारस को जानने समझने के साथ ही तवायफों की जिंदगी में आये बदलाव और उस समय जो तमाम तरह के आंदोलन चल रहे थे वह वेश्याओं के जीवन को किस प्रकार प्रभावित कर रहे थे समाज के इस बनते-बिगड़ते रिश्तों ने तवायफों की जिन्दगी कैसे बदली! इन सारी बातों को जानने समझने के लिए हिंदी में ‘सेवासदन’ एक दस्तावेज है।

‘सेवासदन’ सर्वप्रथम उर्दू में सन 1916 ई में प्रकाशित होता है। जबकि इसका हिंदी संस्करण 1917-1918 ई. में आता है। अगर हम इन दोनों तिथियों पर गौर करें तो देखते हैं कि यह समय विश्व युद्ध का है तो दूसरा छायावाद के आगमन का। 1916 में ही महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आते हैं तो वहीं 1916 में ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का वर्ष भी है। एक तरफ नवजागरण का तो दूसरे समाज सुधार आंदोलनों का भी। इन आंदोलनों के उथल-पुथल के बीच बनारस किस स्थिति से गुजर रहा था यह देखना भी बड़ा दिलचस्प होगा।

II

‘सेवासदन’ की कथावस्तु के केंद्र में भी बनारस और दालमंडी ही है। वैसे देखा जाय तो इस उपन्यास के केंद्र में कई समस्या है; जैसे- आदर्शवाद एवं खोखली नैतिकता के बोझ से दबा मध्यवर्ग, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति आदि। इस उपन्यास की शुरुआत ही होती है दरोगा कृष्णचन्द्र के पछताने से। कृष्णचन्द्र एक ईमानदार अफसर हैं जो अपनी मेहनत की कमाई में ही खुश हैं। अपने मातहतों के प्रति उदार भी थे लेकिन अच्छाई से किसी का पेट थोड़े ही भरता है। डाट-डपट सब सुन सकते हैं लेकिन आमदनी होनी चाहिए। उनका मानना है कि- “रुखी रोटियाँ चाँदी के थाल में परोसी जाएँ, तो भी वे पूरियाँ न हो जाएँगी।”¹⁷ कृष्णचन्द्र की सुमन और शांता दो बेटियाँ हैं कृष्णचन्द्र अपनी दोनों बेटियों को खूब पढ़ाते-लिखाते, अच्छा खिलाते-पहनाते थे। कहने का आशय यह है कि जितना कमाते सब खर्च हो जाता। पत्नी गंगाजली के कहने पर भी हाथ नहीं बांध पाते थे। लड़कियाँ धीरे-धीरे शादी के योग्य होने लगीं, कृष्णचंद्र अखबारों में दहेज विरोधी आलेख पढ़कर ही खुश हो जाते। वे इस मुगालते में रहने लगे कि अब दहेज की प्रथा समाप्त होने लगी है। वे कागजी दुनिया को ही वास्तविक दुनिया समझ बैठे थे। यह समाज की विडंबना ही है कि हम कहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं। हमारा व्यवहार और हमारा ज्ञान कुछ और ही कहता है। हम अपने ज्ञान और व्यवहार में सामंजस्य नहीं बैठा पाते जिसका परिणाम हमारी आने वाली पीढ़ी को भुगतना पड़ता है। उसी का परिणाम कोई दोष न होने के बाद भी ‘सेवासदन’ की सुमन भुगत रही है।

कृष्णचंद्र की बेटियाँ रूप और गुण दोनों से संपन्न थीं। इसलिए वे और भी आश्वस्त थे। लेकिन जब वे वर ढूँढने निकलते हैं तब उन्हें समाज की वास्तविक स्थिति का भान होता है। तब उन्हें समझ में आता है कि असल जिंदगी अखबारों से अलग होती है। वे शिक्षित परिवार ढूँढ़ रहे थे उनको लगता था जहाँ शिक्षा होगी वहाँ दहेज जैसी बीमारी नहीं होगी; लेकिन उनकी यह धारणा निर्मूल्य साबित होती है। “उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वरों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार है।”¹⁸ कुछ लोग जो इस प्रथा को बुरा तो मानते हैं लेकिन अपनी बेटी को दिए पैसे वसूलना चाहते थे- “एक सज्जन ने कहा- महाशय मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी दुश्मन हूँ, लेकिन क्या करूँ, अभी पिछले साल लड़की का विवाह किया, दो हजार रुपये केवल दहेज में देने पड़े, दो हजार और खाने पीने में खर्च करने पड़े,

आप ही कहिए यह कमी कैसे पूरी हो?"¹⁹ यहीं से सारी समस्या की शुरुआत होती है। कृष्णचंद्र के सामने केवल दो ही रास्ते हैं, वे कहते हैं- "या तो सुमन को किसी कंगाल के पल्ले बांध दूँ या कोई सोने की चिड़िया फँसाऊँ। पहली बात तो होने से रही, बस अब सोने की चिड़िया की खोज में निकलता हूँ। धर्म का मजा चख लिया, सुनीति का हाल भी देख चुका। अब लोगों को खूब दबाऊँगा; खूब रिश्वत लूँगा, यही अंतिम उपाय है।"²⁰ कृष्णचंद्र बेटी को कुंवारी रह जाने के पाप से बचने के लिए पहली बार अपनी आत्मा बेचते हैं लेकिन इस पेशे में पक्के न होने के कारण पकड़े जाते हैं। जबकि दूसरे अफसर उससे अधिक रोज ही डकार जाते हैं किसी को कानों-कान खबर ही नहीं होती या चोर-चोर मौसरे भाई वाली बात चरितार्थ होती है।

'सेवासदन' धर्म के ठेकेदारों को भी सामने रखता है। जो जितना बड़ा धार्मिक है वह उतना ज्यादा भ्रष्ट है। जैसे अभी मर्यादा पुरुषोत्तम राम राजनीति के केंद्र में हैं उसी प्रकार महंत रामदास का सारा कारोबार 'श्री बांके बिहारीजी' के नाम पर होता है। जमींदारों का जितना भी काम होता था; जैसे- सूद, मालगुजारी, बेगारी सब यहाँ बांके बिहारी के नाम पर था। जिसके लिए दस-बीस मोटे साधु भी रखे गए थे। 'सेवासदन' में प्रेमचंद लिखते हैं- "श्री बांके बिहारी जी' लेन-देन करते थे और 32 रुपये सैकड़े से कम सूद न लेते थे। वही मालगुजारी वसूल करते थे, वही रेहननामे-बैनामे लिखाते थे। 'श्री बांके बिहारी लाल जी' की रकम दबाने का किसी को साहस न होता था और न अपनी रकम के लिए कोई दूसरा आदमी उनसे लड़ाई कर सकता था। 'श्री बांके बिहारी जी' को रुष्ट करके उस इलाके में रहना कठिन था।"²¹ आगे लिखते हैं "महंत जी का अधिकारियों में खूब मान था। 'श्री बांके बिहारी जी' उन्हें खूब मोतीचूर के लड्डू और मोहन-भोग खिलाते थे। उनके प्रसाद से कौन इनकार कर सकता था? ठाकुर जी संसार में आकर संसार की रीति से चलते थे।"²² धर्म के ठेकेदार समाज के सामने एक मानदंड निर्मित करते हैं जो मध्यवर्ग को गहरे प्रभावित करता है। ये लोग अपनी सुविधा एवं रुचि के अनुसार मानदंड परिवर्तित करते रहते हैं, ये ऐसा चक्रव्यूह रचते हैं कि सामान्य जन उनकी चालाकियों को समझ ही नहीं पाता और वह इनके द्वारा बनाए सारे नियमों को ईश्वर का वरदान समझ लेता है। यही कारण है कि आमजन इन ठेकेदारों के पाखंड का शिकार होता चला जाता है।

यहीं से सारी समस्या शुरू होती है और कृष्णचन्द्र का सारा घर बिखर जाता है। जो थोड़े पैसे थे वह केस-मुकदमे में उड़ जाते हैं। गंगाजली अपनी बेटियों के साथ अपने भाई उमानाथ के यहाँ बोझ बन जाती है। पैसे के अभाव में सुमन का विवाह काशी के गजाधर पांडे जिसकी पहली पत्नी मर चुकी थी उसके साथ हो गया। गजाधर पांडे के पास घर-बार, जमीन जायदाद के नाम पर कुछ भी नहीं है। जो थोड़े से पैसे गजाधर कमाकर लाता है सुमन उसी में संतोष करती है लेकिन इतनी सुविधाओं में पत्नी-बड़ी सुमन कितना अपने ऊपर नियंत्रण कर पाती ! गजाधर भी इतनी रूपवान पत्नी पाकर बहुत खुश था लेकिन कभी वह संशय से ग्रस्त भी हो जाता था।

एक कहानी सुमन की है जो अभाव में रहते हुए भी अपने पतिव्रता धर्म का निर्वाह कर रही है जिस पर उसको गर्व भी है। उसके घर के सामने भोली नाम की एक वेश्या रहती है। जिसके यहाँ पूरी शानो-शौकत है फिर भी सुमन उसे घृणा की दृष्टि से देखती है। केवल सुमन ही नहीं आज भी भारतीय समाज यही मानता है। सुमन भी वेश्याओं के बारे में यही जानती थी कि - "वेश्याएँ अत्यंत दुश्चरित्र और कुलटा होती हैं। वह अपने कौशल से नवयुवकों को अपने माया जाल में फँसा लिया करती हैं। कोई भला मानुस उनसे बातचीत नहीं करता, केवल शोहदे रात को छिपकर उनके यहाँ जाया करते हैं।.....

वह अपने को उससे श्रेष्ठ समझती थी। मैं दरिद्र सही, दीन सही, पर अपनी मर्यादा पर दृढ़ हूँ!...बस, अपने कोटे पर बैठी अपनी निर्लज्जता और अधर्म का फल भोगा करे। लेकिन सुमन को शीघ्र ही मालूम हुआ कि मैं इसे जितना नीच समझती हूँ, उससे वह कहीं ऊँची है।”²³ आप देखेंगे कि शहर के बड़े-बड़े रईश सब के सब दिन के उजाले में तो इधर कदम नहीं रखते लेकिन इन सबका कोठे पर आना-जाना है चाहे वह ऋषि धर्मसभा के सभापति चिम्मन लाल हों, पंडित दीनानाथ हों, अबुलवफा या और कोई हो।

‘सेवासदन’ में विवाह संस्था की खूब महिमा है। देखा जाय तो भारतीय संस्कृति के मूल में नैतिकता का दबाव ज्यादा दिखाई पड़ता है। इसी के चलते हमारे यहाँ स्त्रियों को नैतिक मूल्यों की खूब शिक्षा दी जाती है। इसी मूल्य के साथ ही सुमन भी बिदा की जाती है। यही कारण है कि पति की दुत्कार के बाद भी सुमन उन मूल्यों को थामें रखना चाहती है। अंततः उसका स्वाभिमान अपने को और अधिक जलील होता नहीं देख पाता और वह घर छोड़ कर निकल जाती है। देखा जाय तो सीता-सावित्री के जिस आदर्श से भारतीय समाज की स्त्रियों को लुभाया जाता रहा है वह आदर्श सुमन को लुभा नहीं पाता। सुमन को विवाह संस्था का घुटन भरा माहौल आकर्षित नहीं कर पाता। उसको तो भोली की स्वच्छंदता, उसकी स्वतंत्रता आकर्षित करती है। लेकिन गजाधर के समझाने पर उसको यह बात समझ में आ गयी कि कुछ भी हो धर्म बड़ा है और सुमन पतिव्रता धर्म का पालन कर रही है। समाज का यह भी कितना बड़ा विरोधाभास है कि जब एक स्त्री दूसरी स्त्री के पास जाती है तो उसकी इज्जत-आबरू चली जाती है, लाज शर्म सब घोल कर पी जाती है लेकिन यह सब काम पुरुषों के लिए गौरव है। सुमन बार-बार अपने मन को समझाती कि जो लोग भोली के पास आते जाते हैं, वे सब धर्म की परवाह न करने वाले लोग हैं और वह रामायण मँगाकर पढ़ने लगती फिर अगले ही पल परिस्थितियाँ विपरीत हो जाती हैं—“सुमन ने खिड़की से आँगन में झाँका, तो क्या देखती है कि वही पड़ोसिन भोली बैठी हुई गा रही है। सभा में एक से एक बड़े आदमी बैठे हुए थे, कोई वैष्णव तिलक लगाये, कोई भस्म लगाये, कोई गले में कंठी-माला डाले और राम-नाम की चादर ओढ़े, कोई गेरुआ वस्त्र पहने। उनमें से कितनों ही को सुमन नित्य गंगा स्नान करते देखती थी। वह उन्हें धर्मात्मा विद्वान समझती थी वही लोग यहाँ इस भाँति तन्मय हो रहे थे, मानो स्वर्गलोक में पहुँच गए हों भोली जिसकी ओर कटाक्षपूर्ण नेत्रों से देखती, वह मुग्ध हो जाता, मानों साक्षात् राधा-कृष्ण के दर्शन हो गए।”²⁴ सुमन जब-जब धर्म को प्रतिष्ठापित कर अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की कोशिश करती है तब-तब धर्म के वही रक्षक उसके सामने आ खड़े होते हैं और यह देख वह किसी भी तरह अपने मन को दिलासा दिलाने में नाकाम रहती कि भोलाबाई किसी भी तरह से उससे कम है।

सुमन सब कुछ अपनी आँखों से देख रही थी कि जिस पतिव्रता पर उसको गुमान था उसकी अधीनता और भोली की स्वतंत्रता भी। देखती है कि जिस पर भोली की केवल दृष्टि ही पड़ जाती है वह उसके एक इशारे पर मर-मिटने को तैयार है रूपवान, धनवान, भाग्यवान सभी भोली के बड़े कद्रदान हैं। यह बात सुमन को आकर्षित करती है। भोली की स्वच्छंदता देख सुमन का मन भी हिलोर लेने लगता है। अंत में वह इस निर्णय पर पहुँची कि “वह स्वाधीन है, मेरे पैरों में बेड़ियाँ हैं। उसकी दुकान खुली है, इसलिए ग्राहकों की भीड़ है, मेरी दुकान बंद है, इसलिए कोई खड़ा नहीं होता। वह कुत्तों के भूकने का परवाह नहीं करती, मैं लोक निंदा से डरती हूँ। वह परदे के बाहर है, मैं परदे के अंदर हूँ। वह डालियों पर स्वच्छंदता से चहकती है, मैं उसे पकड़े हुए हूँ। इसी लज्जा ने इसी उपहास के भय ने मुझे दूसरे

की चेरी बना रखा है।”²⁵ सुमन को पद्म सिंह के जलसे से लौटने में देर हो जाती है। जलसा होता ही ऐसा है जब जी लग जाये तो समय का पता ही नहीं चलता। सुमन भी इसी मुगालते में थी कि अभी तो रात के दस ही बजे होंगे लेकिन रात काफी बीत जाने के कारण इधर गजाधर भी क्रोध की अग्नि में जलने लगता है। सुमन अँधेरी रात और गंध भरी नाली के पास खड़ी होकर गजाधर के दरवाजा खोलने का इंतजार करती रहती है। अंततः दरवाजा नहीं खुलता एक बार पुनः सुमन को भोली बाई का जीवन आकर्षित करता है वह सोचती है- “मैं कैसी हतभागिनी हूँ, एक वह स्त्रियाँ हैं जो आराम से तकिया लगाये सो रही हैं, लौडिया पैर दबाती हैं। एक मैं हूँ कि यहाँ बैठी हुई अपने नसीब को रो रही हूँ। मैं यह सब दुख क्यों झेलती हूँ ? एक झोपड़ी में टूटी खाट पर सोती हूँ, रूखी रोटियाँ खाती हूँ, नित्य घुड़कियाँ सुनती हूँ क्यों ? मर्यादा-पालन के लिए ही न ? लेकिन संसार मेरे इस मर्यादा-पालन को क्या समझता है? उसकी दृष्टि में इसका क्या मूल्य है ? क्या यह मुझसे छिपा हुआ है? दशहरे के मेले में, मुहर्रम के मेले में, फूलबाग में, मंदिरों में, सभी जगह तो देख रही हूँ। आज तक मैं समझती थी कि कुचरित्र लोग ही इन रमणियों पर जान देते हैं, किन्तु आज मालूम हुआ कि उनकी पहुँच सुचरित्र और सदाचार शील पुरुषों में भी कम नहीं है। वकील साहब कितने सज्जन आदमी हैं, लेकिन आज वह भोली बाई पर कैसे लट्टू हो रहे थे।”²⁶ देखा जाय तो स्वतंत्रता की चाह और सुख-सुविधाओं की जरूरत के बावजूद सुमन इस रास्ते पर नहीं जाना चाहती, वह गजाधर से माफी माँगती है, बार-बार विनती करती है लेकिन यहाँ उसकी विनती स्वीकार नहीं होती। वह पंडित पद्म सिंह शर्मा के यहाँ भी आश्रय माँगती है। ये वहीं पद्म सिंह है जो बड़े समाज सुधारक और हिन्दू धर्म के संरक्षक भी हैं। पद्मसिंह भी लोक के भय से उसको घर से निकाल देते हैं। इतना ही नहीं सुमन सिलाई करके भी जीवन-यापन करने को तैयार है लेकिन यह समाज उसकी कोई मदद नहीं करता। अंततः वह वहीं पहुँच जाती है जहाँ जाने का तो रास्ता है लेकिन वहाँ से वापस लौटने का नहीं।

देखा जाय तो इस उपन्यास की संरचना त्रिकोण रूप में दिखाई पड़ती है। सुमन मिर्जापुर के अमोला की है और उसकी शादी काशी में होती है और वहीं अमोला और काशी के बीच चुनार भी है। यह वही चुनार है जहाँ पद्म सिंह और सदन का गाँव है। एक और दृष्टि से देखा जाय तो काशी और मिर्जापुर का संबंध सुंदरबाई और काशी के नागर के रूप में भी है। शायद यहीं से इस कजरी की बात उठी हो कि ‘मिरजापुर में कईला गुलजार हो कचौड़ी गली सून कईला बलमा।’ कजरी बनारस और मीरजापुर के गहरे संबंध की व्याख्या करता है और यही परम्परा बनारस से भारतेंदु और मिर्जापुर से प्रेमघन को भी जोड़ती है और प्रेमचंद और दालमंडी को भी। जब वारेन हेन्स्टिंग को बनारसियों ने खदेड़ा तब वह चुनार से होते हुए मिर्जापुर ही पहुँचा था।

सुमन अमोला से काशी आती है और काशी में ही श्रीमती एनी बेसेंट ‘सेंट्रल हिन्दू स्कूल’ की स्थापना करती हैं जिसका विकास 1916 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में दिखाई पड़ता है। संयोग यह कि ‘सेवासदन’ भी उर्दू में 1916 में ही आता है। आज भी आप देखेंगे कि चाहे सोनभद्र हो, मिर्जापुर हो या जौनपुर, गाजीपुर आदि शहरों का बाजार बनारस ही है। पुराने समय में भी था।

नई सड़क या कहीं दालमंडी के थोड़ी ही दूर पर चेतगंज में आर्य महिला नाम की संस्था की स्थापना होती है। हम जानते हैं कि ‘आर्य समाज’ अपने समय से आगे था वह तमाम सामाजिक बुराईयों के खिलाफ बिगुल बजा रहा था और अब वह बनारस में भी दस्तक दे चुका था। प्रेमचंद ‘आर्यसमाज’ से गहरे प्रभावित थे। यही कारण था कि वे शिवरानी देवी जो बाल विधवा थीं उनसे प्रेमचंद का विवाह

आर्यसमाज की रीति से ही हुआ था। उस समय जितने सुधार आंदोलन चल रहे थे चाहे वह आर्य समाज का हो, गाँधी, अम्बेडकर सबको प्रेमचंद देख व समझ रहे थे जिसका पूरा प्रभाव 'सेवासदन' में देखा जा सकता है।

उस समय का काशी, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई धर्म और अंग्रेजों से टकरा रहा था। काशी में ईसाई भी आ चुके थे जिन्होंने अपने धर्म के प्रचार का माध्यम शिक्षा को बनाया। वे लोग हिन्दू घरों में बच्चों को पढ़ाने के बहाने प्रवेश करते थे। इसकी पुष्टि मंगल सिंह और एनी के इस कथन से होती है जब एनी पूछती है कि "तुम ईसाई कैसे हुए?" "कोई खास अंतःप्रेरणा का सवाल न था, बनारस में भी अंग्रेज पादरी-पदारिनें ईसाई धर्म का प्रचार करती हैं, किन्तु बनारस स्वयं हिन्दुओं का रोम है इसलिए उन्हें उतनी सफलता नहीं होती। एक बार एक डाक्टर पादरी ने मेरी माँ का ईलाज किया था, जिसके बाद उनकी स्त्री मेरे घर आने-जाने लगी। फिर उसी पदारिन ने माँ को समझाया कि बच्चे को अंग्रेजी पढ़ाओ। पाँच-छै ही वर्ष से पादरी ने मुझे अंग्रेजी पढ़ाना शुरू किया। ...आठ वर्ष का होने के बाद मैं ज्यादा पादरी और पादरिन के घर पर रहता। मुझे हिन्दू धर्म के बारे में बहुत कम सुनने का मौका मिला; यदि कुछ मिला, तो पादरीन के मुख से। वह कहा करती थी, तुम्हारा ही भाग्य है, हिन्दू धर्म को एक समझ कर बेटा! जो तुम्हारी माँ बच गई, नहीं तो तुम्हारे बाप के मरने के बाद उन्हें लोग जलाकर सती कर डालना चाहते थे। मेरी माँ का जिन्दा जलाया जाना-सती होना-और हिन्दू धर्म को एक समझ कर तुम्हीं समझ सकती हो, एनी ! ...उस वक्त सती प्रथा बंद होने (1826) में दो साल की देरी थी।"²⁷ सेवासदन की सुमन भी कहती है कि "मैं तो दो साल तक ईसाई लेडी से पढ़ चुकी हूँ।" यहाँ प्रेमचंद अपने समय से बहुत आगे सोचते हैं। जहाँ स्त्रियों के यहाँ अभी शिक्षा की रोशनी तो नहीं उसकी किरण पहुँच रही है वहाँ स्त्री की आजादी के प्रश्न को सामने रखते हुए उसके अधिकार और उसकी स्वतंत्रता पर भी बात करते हैं। सुमन की बात सुनकर भोली बाई कहती है, "दो-तीन साल की कसर रह गई। इतने दिन और पढ़ लेतीं, तो फिर यह ताक न लगी रहती। मालूम हो जाता कि हमारी जिंदगी का क्या मकसद है, हमें जिंदगी का लुप्त कैसे उठाना चाहिए। हम कोई भेड़-बकरी तो नहीं कि माँ-बाप जिसके गले मढ़ दें, बस उसी की हो रहें।.....यह बेहूदा रिवाज यही के लोगों में है कि इतना जलील समझते हैं; नहीं तो और सब मुल्कों की औरतें आजाद हैं, अपनी पसंद से शादी करती हैं और उससे रास नहीं आती, तो तलाक दे देती हैं। लेकिन हम सब वही पुरानी लकीर पीटे जा रहे हैं।"²⁸ भोली का विवाह भी इसी तरह अनमेल विवाह था लेकिन वह उससे मुक्त हो गयी। हाँ मुक्त होने पर उसने पुनः विवाह संस्था को नहीं चुना ! उन सामाजिक मर्यादाओं को नहीं निभाया जो उसके लिए ठीक न थे। भोली बाई का कहना था कि- "मेरे माँ-बाप ने मुझे एक बूढ़े मिथों के गले बांध दिया था। उसके यहाँ दौलत थी और सब तरह का आराम था, लेकिन उसकी सूरत से मुझे नफरत थी। मैंने किसी तरह छः महीने तो काटे, आखिर निकल खड़ी हुई। जिंदगी जैसी नियामत रो-रोकर दिन काटने के लिए नहीं दी गई है।...आज यहाँ कौन रईस, कौन महाजन, कौन मौलवी, कौन पंडित ऐसा है, जो मेरे तलवे सहलाने में अपनी ईज्जत न समझे? मंदिरों में, ठाकुर द्वारों में मेरे मुजरे होते हैं। लोग मिन्नतें करके ले जाते हैं। इसे मैं अपनी बेईज्जती कैसे समझूँ ? अभी एक आदमी भेज दूँ, तो तुम्हारे कृष्ण-मंदिर के महंत जी दौड़े चले आवें। अगर कोई इसे बेईज्जती समझे, तो समझा करे।"²⁹ देखा जाय तो भोली बाई कुछ भी गलत नहीं कह रही, वह समाज का सच उजागर कर रही है जिसको सुमन भी देख व समझ रही थी।

इस तरह से हम देख सकते हैं कि प्रेमचंद 'सेवासदन' में दो पात्र रचते हैं एक सुमन जो ब्राह्मणी

है और दूसरी भोली बाई ये दोनों स्त्रियाँ अपने-अपने समाज का सच रचती हैं। यहाँ भोली बाई का किरदार एक स्वतंत्र नारी का है तो वहीं सुमन विवाह संस्था और जातीय जकड़न में जकड़ी हुई है। एक का यह पुरुष समाज तलवे चाटता है जबकि दूसरी गरीब व परतंत्र होने के कारण असहाय है। इस परतंत्रता के बावजूद 'सेवासदन' की नायिका सुमन है जो ब्राह्मण समाज के रीति-रिवाज उनकी परम्परा और उनके खोखले आदर्श सबको संभाले हुए थी। आर्यसमाज भी इन खोखले रीति-रिवाजों के विरोध में खड़ा हो रहा था और सुमन भी जिसकी गूँज 'सेवासदन' में भी सुनाई पड़ती है।

सुमन अब दालमंडी में पहुँच जाती है। वहाँ जाकर वह बहुत खुश तो नहीं तो दुःखी भी नहीं है। लेकिन धर्म के रक्षकों को ब्राह्मणी सुमन के कोठे पर पहुँच जाने पर बहुत दुःख होता है। वे उसे वहाँ से बाहर निकालने की कोशिश करने लगते हैं। सुमन के कोठे पर जाने के बाद बड़े-बड़े सेठों और धर्मसुधारकों की पोल खुलने लगती है। ये सारे लोग कोठे पर भी दरबार लगाते हैं लेकिन दिन के उजाले में इसको बुरा मानते हैं। बिट्टलनाथ जो कि बहुत बड़े धर्म रक्षक हैं सुमन को कोठे से निकाल कर अपने धर्म और समाज की रक्षा करना चाहते हैं। सुमन के जीवन निर्वाह के लिए कुछ रुपयों का बंदोबस्त करने के लिए धर्म रक्षकों और सेठों सबके पास जाते हैं लेकिन कोई मदद के लिए तैयार नहीं होता। बाद में पंडित पद्मसिंह अपने उपर आये कलंक के प्रायश्चित्त के लिए रुपये देने के लिए राजी होते हैं।

यहाँ प्रेमचंद भी तत्कालीन समाज सुधारकों की तरह द्वन्द्व में दिखाई पड़ते हैं। हम देख सकते हैं कि नवजागरण कालीन सभी लेखक, विचारक किसी भी राय पर एकमत नहीं हैं। स्त्रियों के संबंध में उनकी दृष्टि भी साफ नहीं है। एक तरफ उन्हें छूट देते हैं फिर हाथ पीछे खींच लेते हैं। भारतेंदु युग के लेखकों की राय भी इससे अलग नहीं है। इस संबंध में वीर भारत तलवार ने अपनी पुस्तक 'रस्साकशी' में विस्तार से विचार किया है।

उधर पद्मसिंह का भतीजा सदन जो सुमन को दिल दे बैठा है वह गाँव और शहर दोनों की संस्कृति में रचा बसा है। वह गाँव का जीवन भी देख चुका है और शहर की चकाचौंध भी। यही कारण है कि वह आगे चलकर नई परम्परा का वाहक बनता है।

सदन की शादी में तवायफों के नाच की बात होती है। पद्म सिंह के भाई मदन सिंह जो गाँव में रहते हैं वह यह सोच ही नहीं पाते कि बिना नाच के बरात भी जा सकती है यह वही समय है जब कोठे की इस परंपरा का विरोध होना शुरू हो गया था। यह गाँव व शहर की संस्कृति में बदलाव का सूचक भी है। गाँव अपेक्षाकृत पिछड़ा है जबकि शहर में बदलाव की रोशनी फैल रही है। मदन सिंह भी इस परम्परा का खूब विरोध करते हैं लेकिन अपने घर से इसकी शुरुआत नहीं कर सकते। उनका एक ही लड़का है जिसके विवाह में कोई कमी नहीं करना चाहते। अंत में बरात ऐसे ही बिना नाच के चुनार से अमोला के लिए निकल पड़ती है। वहाँ वही होता है जिसका मदन सिंह को डर था। भले ही काशी के संगीत समाज ने प्रतिष्ठित श्याम कल्याण की धुन छोड़ी हो लेकिन यहाँ इसको सुनने वाले कोई न थे, सभी को नाच ही देखना था। नाच आया न देखकर कुछ उपद्रवी पत्थर फेकने लगते हैं। तभी अचानक एक साधु प्रकट होता है और ज्ञान देने लगता है - "साधु ने त्रिशूल ऊँचा किया और तिरस्कारपूर्ण स्वर से बोला - हा शोक ! यहाँ कोई नाच नहीं, कोई वेश्या नहीं, सब बाबा लोग उदास बैठे हैं। श्याम-कल्याण की धुन कैसी है, पर कोई नहीं सुनता है, किसी के कान नहीं, सब लोग वेश्या का नाच देखना चाहते हैं।... तुम्हारा पड़ोसी दरिद्र किसान जमींदार के जूते खाकर कैसा नाच रहा है। तुम्हारे भाईयों के

अनाथ बालक क्षुधा से बावले होकर कैसे नाच रहे हैं। क्या यह नाच देखना पसंद नहीं? तो अपने मन को देखो कपट और छल कैसा नाच रहा है। सारा संसार नृत्यशाला। उसमें लोग अपना-अपना नाच रहे हैं। क्या यह देखने के लिए तुम्हारी आँखें नहीं हैं? ... अज्ञान की मूर्तियों हा! विषयभोग के सेवकों तुम्हें नाच का नाम लेते लज्जा नहीं आती! अपना कल्याण चाहते हो तो इस रीति को मिटाओ। कुवासना को तजो, वेश्या-प्रेम का त्याग करो।”³⁰ इतनी बात कहकर साधु अंतर्ध्यान हो जाता है। इस पूरी पंक्ति में पूरे समाज का सत्य दार्शनिकता का पुट लिए हुए दिखाई पड़ता है। सच ही तो है समस्त ब्रह्मांड में नृत्य जारी है और हम सब कठपुतली की भांति नाच रहे हैं।

गजाधर इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है। देखा जाय तो गजाधर के अनादर और दुत्कार की वजह से ही सुमन कोठे की राह लेती है। लेकिन इस पूरे उपन्यास में गजाधर के प्रति कहीं दुराग्रह दिखाई नहीं पड़ता। सुमन दर-दर की ठोकर खाते रहती है। हर जगह लाछित होती है। बेसहारा हो जाती है, लेकिन गजाधर सिद्ध योगी हो जाते हैं। जो थोड़ा बहुत है स्वयं का पश्चाताप है। इसके अलावा न कभी समाज उसे तिरस्कृत करता है और न ही जीवन-यापन के लिए कोई संघर्ष ही करना पड़ता है। गजाधर को बाद में सुमन के प्रति सहानुभूति तो होती है लेकिन कहीं भी सुमन को उस स्थिति से उबारने का कोई प्रयास दिखाई नहीं पड़ता। यहाँ भी समाज के दोहरे रवैये को देखा जा सकता है।

ध्यान दिया जाय तो कबीर भी बनारस के ही जुलाहा थे। उनके स्वभाव में जो फक्कड़पन, जो सच्चाई, समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वास आदि सबका खुलकर विरोध दिखाई पड़ता है। प्रेमचंद भी कबीर से गहरे प्रभावित हैं उनके दर्शन का प्रभाव उपर्युक्त पंक्ति में दिखाई पड़ता है। ‘सेवासदन’ का कृष्णचंद्र भी कबीर की इस पंक्ति को गाते हुए नजर आते हैं-

“लकड़ी जल कोयला भई और कोयला जल भई राख।
मैं पापिन ऐसी जली की कोयला भई न राख !”³¹

बनारस जो अपनी परम्परा और संस्कृति के लिए मशहूर है वह जो अपने फक्कड़ और अक्खड़ स्वभाव के लिए जाना जाता है वहाँ परिवर्तन की संभावना एक चुनौती थी। शिवप्रसाद मिश्र ‘रूद्र’ एक अंग्रेज का जिन्न करते हैं जो अपनी मंगेतर को पत्र लिख कर यहाँ के लोगों के बारे में बताता है कि - “हम लोग यहाँ एक खंडहर में रहते हैं, जिसे यहाँ वाले अब तक किला ही कहते हैं। यह शहर भी अजीब है, यहाँ के बहुत पुराने नगरों में है। मुसलमान जिस पूज्य दृष्टि से मक्का, यहूदी फिलिस्तीन और ईसाई यरूशलम या रोम को देखते हैं, इस नगर के प्रति हिन्दुओं की दृष्टि उससे भी अधिक श्रद्धा-सम्पन्न है। मेरे एक सिविलियन दोस्त ने मुझे बताया है कि यहाँ के लोग बड़े ही ‘तर्बुलेंट’ (दुर्दान्त) हैं; वे गंभीर बातों पर विज्ञतापूर्ण दृष्टि से मुस्कराते हैं छोटी-छोटी बात पर लड़ मरते हैं।”³² आज भी बनारस अपने इसी मन-मिजाज के लिए मशहूर है।

सदन की शादी सुमन की बहन से होने वाली रहती है लेकिन शांता को भी तवायफ की बहन होने की कीमत चुकानी पड़ती है। सदन की आई हुयी बरात वापस चुनार चली जाती है।

इधर सुमन कोठा त्याग कर बाहर निकलती है लेकिन यहाँ भी उसका संघर्ष कम नहीं होता। यह सभ्य समाज उसे स्वीकार नहीं कर पाता। उसकी पहचान छिपाकर उसे विधवा आश्रम में रखा जाता है लेकिन वहाँ भी सभ्य कहे जाने वाले लोग गिद्ध की तरह मंडराने लगते हैं। कुछ दिन बाद जब विधवा आश्रम के लोगों को सुमन के बारे में पता चलता है तो वहाँ की स्त्रियाँ आश्रम छोड़ने लगती हैं जिसे

देख सुमन अपनी बहन शांता के साथ आधी रात में आश्रम छोड़ निकल जाती है।

कहते हैं कि शहर बदलाव लाता है। यही बदलाव सदन के यहाँ दिखाई पड़ता है। गाँव में राजा बाबू की तरह रहने वाला सदन शहर में आकर अपने पैर पर खड़ा हो जाता है। यह बदलाव उसके विचारों में भी आता है जिससे वह शांता को स्वीकार कर लेता है। लेकिन प्रश्न यह है कि जिस गजाधर और समाज की वजह से सुमन कोठे पर जाती है वह गजाधर साधु बनकर बड़ी-बड़ी बातें तो करता है लेकिन सुमन को स्वीकारता नहीं है। उधर सुमन के पिता गंगा में विलीन हो जाते हैं सुमन भी उसी गंगा के पार जाना चाहती है। यह बात याद रखनी होगी कि सुमन तमाम संघर्षों के बाद भी आत्महत्या नहीं करती वह एक अलग रास्ता चुनती है वह है सेवा का।

देखा जाय तो 1819 में बनारस, लखनऊ, आगरा जैसे अन्य जगहों पर सरकार ने तवायफों पर पाबंदी लगानी शुरू कर दिया था। अब तवायफों को शहर की मुख्यधारा से अलग बसाने की बात होने लगी थी। इस कानून से बनारस की तवायफों को भी दो-चार होना पड़ा। प्रेमचंद जी 'सेवासदन' में लिखते हैं- "हमने वेश्याओं को शहर के बाहर रखने का प्रस्ताव इसलिए नहीं किया कि हमें उनसे घृणा है। हमें उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनाएँ, हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथाएँ हैं जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया। यह दालमंडी हमारे ही जीवन का कलुषित प्रतिबिंब, हमारे ही पैशाचिक अधर्म का साक्षात् स्वरूप है। हम किस मुँह से उनसे घृणा करें। उनकी अवस्था बहुत सोचनीय है। हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हें सुमार्ग पर लायें, उनके जीवन को सुधारें और यह तभी हो सकता है, अभागिन रमणियाँ त्रिण के समान। अगर अग्नि को शांत करना चाहते हैं तो त्रिण को उससे दूर कर दीजिये, तब अग्नि आप-ही-शांत हो जाएगी।"³³ इस तरह दालमंडी की समृद्ध परंपरा तवायफों के निर्वासन में तब्दील हो गयी और सब कुछ बिखर गया। प्रेमचंद लिखते हैं- "म्युनिसिपैलिटी में प्रस्ताव को पास हुए लगभग तीन मास बीत गए, पर उसकी तरमीम के विषय में तेगअली ने जो शंकाएँ प्रकट की थीं, वह निर्मूल प्रतीत हुईं। न दालमंडी के कोठों पर दुकानें ही सजीं और न वेश्याओं ने निकाह-बंधन से ही कोई विशेष प्रेम प्रकट किया! हाँ, कई कोठे खाली हो गए। उन वेश्याओं ने भावी निर्वासन के भय से दूसरी जगह रहने का प्रबंध कर लिया। किसी कानून का विरोध करने के लिए उससे अधिक संगठन की आवश्यकता होती है, जितनी उसको जारी करने के लिए।"³⁴ सेवासदन की सुमन भी इसी सुधार कार्यक्रम के तहत सेवासदन में अनार्थों की सेवा का कार्य संभालती है और इसी तरह जिन तवायफों को अपनी गौरवशाली परम्परा और तहजीब पर गर्व था उन सबको प्रेमचंद 'सेवासदन' में सुधार के मार्ग की ओर मोड़ दिया है। महबूब जान अपनी सारी संपत्ति अनाथालय में दान दे देती हैं तो वहीं रामभोली बाई, जोहरा जान सुंदर बाई राम प्यारी सबको सुधार के मार्ग पर लाने के लिए उपदेश देती हैं। अंततः प्रेमचंद जी लिखते हैं कि- "इसके बाद यह सभा समाप्त हुई और वेश्याओं ने पैदल अलईपुर की ओर प्रस्थान किया, जैसे यात्री किसी धाम का दर्शन करने जाते हैं।" इधर "दालमंडी में अँधेरा छाया हुआ था। न तबलों की थाप थी, न सारंगियों की अलाप, न मधुर स्वरों का गाना, न रसिकजनों का आना-जाना। अनाज कट जाने पर खेत की जो दशा हो जाती है, वही दालमंडी की हो रही थी"³⁵

संदर्भ :

1. औरत की बोली, गीता श्री, सामायिक प्रकाशन नई दिल्ली : 16

2. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2016 : 54
3. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण- 2016 : 140
4. वही : 145
5. सेवासदन, अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका, 2005, वसुधा डालमिया : 9-10
6. सेवासदन, हुस्न का बाजार या सेवा का सदन, गरिमा श्रीवास्तव, तद्भव, अंक 7, संपादक अखिलेश :10
7. सेवासदन, मुंशी प्रेमचन्द, साधना पॉकेट बुक्स दिल्ली : 40
8. औरत की बोली, गीता श्री, सामायिक प्रकाशन नई दिल्ली : 175
9. वही : 14
10. <https://vnstoday.com/city-brides-of-kashi-contribute-to-independence/>
11. बहती गंगा, शिव प्रसाद मिश्र 'रूद्र' : 32
12. वही : 33
13. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2016 : 145
- 14, 15. बनारस टाकिज, सत्य व्यास, हिन्द युग्म, नोयडा उत्तर-प्रदेश : 112
16. औरत की बोली, गीता श्री, सामायिक प्रकाशन नई दिल्ली : 52
17. सेवासदन, मुंशी प्रेमचंद, साधना पॉकेट बुक्स दिल्ली : 5
18. वही : 6
19. वही : 7
20. वही : 7
21. वही : 9
22. वही : 9
23. सेवासदन, मुंशी प्रेमचन्द, साधना पॉकेट बुक्स दिल्ली : 19
24. वही।
25. वही : 31
26. वही : 32
27. वोल्गा से गंगा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल पब्लिशर्स, नई दिल्ली : 261
28. सेवासदन, मुंशी प्रेमचन्द, साधना पॉकेट बुक्स दिल्ली : 40
29. वही : 40
30. वही : 128
31. वही : 113
32. बहती गंगा- शिव प्रसाद मिश्र 'रूद्र' : 64
33. सेवासदन-मुंशी प्रेमचन्द, साधना पॉकेट बुक्स दिल्ली :140
34. वही : 197
35. वही : 220

